IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमा का विकासात्मक अध्ययन

डॉ० राज कुमार

प्राचीन भारतीय इतिहास

संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय

गुप्तकाल भारतीय कला और संस्कृति के इतिहास में "स्वर्ण युग" के रूप में जाना जाता है। इस काल में धार्मिक, सांस्कृतिक, और कलात्मक विकास अपने चरम पर था। हिंदू धर्म के विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा का व्यापक प्रसार हुआ, जिसमें सूर्य प्रतिमा का विशेष महत्व था। गुप्त काल में सूर्य-प्रतिमा का रूपांकन और उनके स्वरूप में महत्वपूर्ण विकास हुआ, जो न केवल धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्त करता है, बल्कि तत्कालीन समाज के सांस्कृतिक और कलात्मक आयामों को भी प्रकट करता है।गुप्तकालीन कला में सूर्य देव को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, क्योंकि सूर्य को प्राचीन काल से ही ऊर्जा, जीवन और प्रकाश का प्रतीक माना गया है। भारतीय मूर्तिकला में सूर्य की प्रतिमाओं के विकास की शुरुआत पहले ही हो चुकी थी, परन्तु गुप्तकाल में इसे नवीन शैली और सौंदर्य के साथ उकेरा गया। इस काल में सूर्य प्रतिमा को उनके आराध्य और वैदिक स्वरूप से आगे बढ़ाकर एक सुसंगठित और सजीव आकार दिया गया। सूर्य देव की प्रतिमाओं में उनकी भव्यता और शक्ति को उकेरने का प्रयास किया गया, जो गुप्तकालीन कलाकारों की शिल्पकला की दक्षता का प्रमाण है।गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमाओं में विशिष्टता यह थी कि इन्हें विशुद्ध भारतीय शैली में ढाला गया था। सूर्य देव को आमतौर पर दोनों हाथों में कमल धारण करते हुए और अलंकृत परिधान पहने हुए दिखाया गया है। उनके मुखमंडल को प्रभामंडल से घेरा गया, जिससे दिव्य ऊर्जा का प्रतीक माना गया।[1] सूर्य प्रतिमाओं में इस काल में मांडूकासन मुद्रा का भी विशेष महत्व था, जिसमें सूर्य को एक ऊँचे मंच पर खड़ा दिखाया गया है। इससे सूर्य की महत्ता और भव्यता को प्रकट करने का प्रयास किया गया।इस काल में सूर्य की प्रतिमाओं को एक पूर्ण विकसित रूप दिया गया, जिसमें उनके चारों ओर विभिन्न प्रतीक जैसे ऊंचे मुकुट, किरणमंडल, और पद्म (कमल) को जोड़ा गया। ये विशेषताएं गुप्तकालीन कला की उत्कृष्टता और नवाचार को प्रकट करती हैं। सूर्य के चारों ओर की गई इस प्रकार की सजावट उनकी अलौकिक शक्ति और गौरव को दर्शाती हैं।गुप्तकाल की सूर्य प्रतिमाओं में गंधार, मथुरा और स्थानीय शैलियों का मिश्रण देखा जा सकता है, जो कलाकारों की विविधता और उनके कला कौशल का परिचायक है। इन प्रतिमाओं के स्वरूप से तत्कालीन समाज में सूर्य उपासना का महत्व भी झलकता है। यह विकास उस युग की धार्मिक और सांस्कृतिक प्रगति का भी प्रतीक है।अतः गुप्तकाल में सूर्य प्रतिमा का विकासात्मक अध्ययन भारतीय कला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। गुप्तकालीन कलाकारों ने धार्मिक भावना और कलात्मक सृजनशीलता को मिलाकर सूर्य देव की प्रतिमाओं में एक अद्वितीय सौंदर्य प्रस्तुत किया। ये प्रतिमाएँ न केवल तत्कालीन धार्मिक विश्वासों को अभिव्यक्त करती हैं, बल्कि भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

बीज शब्द - सूर्य प्रतिमा, मथुरा कला, गुप्तकालीन मूर्तिकला, भारतीय तत्व, धार्मिक प्रतीक, सारथी अरुण, उषा प्रत्युषा

सूर्य प्रकृति की आदिम शक्तियों में से एक है। आकाश में प्रतिदिन प्राची में उदित होने वाले सूर्य को आदिम काल के मनुष्य ने आश्चर्य-मिश्रित आदर से देखा होगा। उसने यह भी देखा होगा कि सूर्य अपने प्रकाश से सारे जगत को दीप्त कर देता है। उसके निकलते हो अन्धकार नष्ट हो जाता है। छाया में नष्ट होने वाली और सूर्य के ताप में स्वस्थ रहने वाली वस्तुओं के ज्ञान ने आदिम मानव को सूर्य के स्वास्थ्यवर्दधक गुणों से भी परिचित करा दिया होगा।[2] अतः सूर्य उन प्राकृतिक शक्तियों में से है, जिसे मनुष्य ने सबसे पहले देवत्व प्रदान किया। इसी कारण सूर्योपासना को परम्परा संसार के अनेक प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित रही। अनेक देवताओं की प्रतिष्ठा बनती, बिगड़ती रही, परन्तु सूर्य को सर्वत्र सम्मान मिलता रहा।भारत में सूर्योपासना का आरम्भ कब हुआ? यह बहुत स्पष्ट रूप से कहना कठिन है। नवपाषाण युगीन संस्कृतियों में सूर्योपासना के अस्तित्व का उल्लेख विचारकों द्वारा किया गया है। प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में प्रचलित विभिन्न प्रतीकों का सूर्य के प्रतीक के तादात्म्य कर यह कल्पना की जाती है कि सूर्योपासना का प्रचलन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में था, साथ ही पाषाण काल से लेकन आद्यैतिहासिक काल तक सूर्योपासना अविराम श्रृंखला को जोड़ने का प्रयास किया गया है। भारत के सैन्धव सभ्यता में भी सूर्योपासना का कोई बहुत स्पष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होता, परन्तु कुछ ठिकरों पर अवश्य ऐसे चिन्ह मिलते हैं, जो परवर्ती युग में सूर्य के प्रतीक समझे जाते थे, जैसे- 'स्वास्तिक', 'चक्र', 'किरणयुक्त-मण्डल' और 'मयूर' विशेष उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकाल में सूर्य की प्रतिमाओं का निर्माण निर्बाध रूप से होता है। इस काल में पूर्वकालिक विदेशी स्वरूप के साथ अनेक भारतीय तत्त्वों के मिश्रण में सूर्य-प्रतिमा का एक नया स्वरूप विकसित हुआ। पूर्वकालिक अनेक तत्वों का भारतीयकरण कर लिया गया। गुप्तकालीन मथुरा की कला में सूर्य-प्रतिमाएँ एकावली, कुण्डल, ऊँचा मुकुट, लम्बा कोट और बूट (उपानह) धारण किये प्रदर्शित हैं, उनके कन्धों पर दुपट्टा भी पड़ा है, इसके अतिरिक्त कमर में एक पट्टी भी बंधी हुई है, जिसके दोनों सिरे अलंकृत है। सूर्य के दोनों हाथों में कमल प्रदर्शित है। संथारूक सूर्य प्रतिमाएँ सात घोड़ों पर सवार हैं, उनके दोनों हाथ में कमल और पास में उषा तथा प्रत्युषा बाण मारती हुई प्रदर्शित हैं।[3] मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित गुप्तकालीन अनेक सूर्य प्रतिमाओं में विदेशी और भारतीय मिश्रित इन तत्त्वों को देवा जा सकता है, जो निम्न विशेषताओं से युक्त हैं-

i. रथ पर आसीन सूर्य प्रतिमाओं को भद्रासन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।
ii. सूर्य मुकुट-धारी हैं।
iii. रथ पर सारथी अरुण को प्रदर्शित किया गया है।
iv. उषा और प्रत्युषा को दाएँ-बाएँ प्रदर्शित किया गया है। किन्हीं किन्हीं प्रतिमा में वे बाण मारती दिखायी गयी हैं।
v. सूर्य को लम्बा कोट और बूट धारण किये हुए दिखाया गया है।
vi. सूर्य के कमर में पट्टी बंधी हुई है।
vii. आसन प्रतिमाओं में उनके बाँए हाथ में खड्ग और दाहिने हाथ में कमलपुष्प प्रदर्शित है।
viii. किन्हीं किन्हीं आसन प्रतिमाओं में दोनों ही हाथों में कमल पुष्प हैं।
ix. दाहिनी तरफ मसिपात्र और लेखनी लिये हुए पिंगल और बाँयी तरफ दण्ड लिये हुए दण्डी प्रदर्शित हैं।
x. सीनक-मुद्रा में निर्मित सूर्य-प्रतिमाओं के दोनों हाथों में और किसी-किसी में एक ही हाथ में कमल पुष्प है।
xi. कुछ प्रतिमाओं में सूर्य के सनाल कमल से युक्त दोनों हाथ कन्थे तक उठे हुए हैं।
xii. कुछ प्रतिमाओं में सूर्य को सिर पर अलंकृत मुकुट और कानों में कुण्डल धारण किये हुए दिखाया गया है।

गुप्तकाल में सूर्य की प्रतिमाओं का निर्माण केवल मथुरा क्षेत्र में ही नहीं होता रहा, बल्कि मध्याभारत, पूर्वी और पश्चिमी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस काल को विशिष्टताओं से युक्त सूर्य प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।[4] इस काल की दो सुन्दर प्रतिमाएँ बंगाल के राजशाही जनपद में कुमारपुर और नियामतपुर से प्राप्त हुई हैं। ये सूर्य प्रतिमाएँ अपनी सामान्य विशिष्टताओं तथा वेश भूषा की दृष्टि से मथुरा की कुषाण कालीन प्रतिमाओं के समान ही हैं। कुमारपुर से प्राप्त सूर्व प्रतिमा में सूर्य को एक कैची पीठिका पर खड़े प्रदर्शित किया गया है वे लम्बा कोट, धारण किये हुए हैं और उनके दोनों हाथों में सनाल कमल है. इस प्रतिमा में उनके दोनों अनुचरों का भी प्रदर्शन हुआ है। नियामतपुर की प्रतिमा में भी सूर्य को एक पीठिका पर खड़े, लम्बा कोट धारण किये हुए तथा कमर में पट्टी बाँधे हुए प्रदर्शित किया गया है। इन दोनों ही प्रतिमाओं में सूर्य रथ के चक्र और नारी परिचारिकाओं का प्रदर्शन नहीं किया गया है। मध्यप्रदेश के भूमरा से प्राप्त गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमा में उनके साथियों एवं अनुचरों की संख्या अधिक दिखायी देती है।

इसमें सूर्य के दोनों ओर दण्डी तथा पिंगल हैं, सारथी अरुण द्वारा रथ चलाया जा रहा है। सूर्य चौड़ा किरीट-मुकुट, कानों में कुण्डल तथा गले में हार पहने हैं; धोती कमर में स्थित मेखला के सामने की ओर से बंधी है; उनके पीछे गोल प्रभामण्डल है; सूर्य के दोनों हाथों में कमलपुष्प का गुच्छा प्रदर्शित किया गया है।[5] यद्यपि इस प्रतिमा पर कुषाणकालीन वेश-भूषा नहीं है फिर भी शरीर पर पवित्र सूत्र का प्रदर्शन किया गया है। ऐसी ही एक मथुरा की आरम्भिक गुप्तकालीन प्रतिमा में सूर्य अपने दोनों हाथों से पुष्पमाला को दोनों छौर से पकड़कर अपने सामने किये हैं। इसमें सूर्य तथा उनके अनुचर उपानह तथा लम्बा कोट धारण किये हुए हैं। इस प्रतिमा में रथ और अश्व का प्रदर्शन नहीं किया गया है। संगमरमर की निर्मित एक अतीव सुन्दर प्रतिमा खैरखानेह (अफगानिस्तान) से उपलब्ध हुई है, जो काबुल संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में सूर्य एक रथ पर आरूढ़ हैं और रथ के अश्वों को सारथी अरुण संचालित कर रहे हैं, सूर्य के बाँयी ओर एक लम्बा दण्ड लिये हुए दण्डी तथा दाहिनी ओर लेखनी तथा मसिपात्र लिये हुए पिंगल को प्रदर्शित किया गया है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार से इस प्रतिमा का समय 309 ई० से 386 ई० के मध्य में होना चाहिये। बंगाल से प्राप्त राजशाही संग्रहालय में गुप्तकाल के अन्तिम चरण की एक प्रतिमा सुरक्षित रखी गयी है, जिसमें सूर्य-प्रतिमा का विकास स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस प्रतिमा में शिव के अनुचरों की संख्या में वृद्धि हो गयी है, इसमें दण्डी, पिंगल के अतिरिक्त सारथी अरुण तथा धनुर्धारिणी देवियाँ उषा एवं प्रत्युषा को भी प्रदर्शित किया गया है। सूर्य किरीट, मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत हैं। वे धोती पहने हैं, उनकी बाँयी ओर कमर में बँधी पट्टी से एक छोटी सी खड़ग लटकती हुई दिखाई गई है। सूर्य के पैर का निचला हिस्सा रथ में धँसा हुआ है किन्तु बूट (उपानह) का कुछ भाग दिखायी दे रहा है।[6]

उपर्युक्त प्रतिमा में विदेशी तत्त्व के अतिरिक्त भारतीय तत्त्व का भी समावेश हुआ है। बूट का अंकन विदेशी प्रभाव का द्योतन करता है, सूर्य के रथ के घोड़ों की संख्या सात है, जो वेदों में बतलायी गई है, सारथी अरुण की परम्परा कुषाण काल से पहले की मूर्तियों में भी विद्यमान है, कमलपुष्प का प्रदर्शन पूर्णतः भारतीय है, जहाँ तक कमर-बन्ध का प्रश्न है वह ईरानी परम्परा है। डॉ० भण्डारकर ने बतलाया है कि मग अपनी कमर में एक मेखला पहनते थे, जो अव्यंग कहलाती थी, अव्यंग, (मेखला) जिसको पुराणों के अनुसार वे कमर में पहनते थे, अवेस्ता का 'ऐव्याओंधेन' है। उसका तात्पर्य 'कुस्ति से है जिसे आजकल भी पारसी पहनते हैं। दण्डी और पिंगल को दिखाने की परम्परा भी ईरानी ही है।[7] भविष्यपुराण में दण्डी और पिंगल को 'राज्ञ' और 'स्रोष' कहा गया है। ईरानी कथाओं में भी सूर्य के दो परिचारक (सेवक) 'रश्नु' और 'सओष' का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः यही भारतीय परम्परा के दण्डी और पिंगल है। पारसिक पुराकथाओं में 'रश्नु को न्यायाधीश कहा गया है[8] , जो मरणोपरान्त मनुष्यों के सद्गुणों और दुर्गुणों का लेखा- जोखा रखता है, यही रश्नु भारतीय राज्ञ या पिंगल है। पारसिक परम्परा में 'सओष मृतकों को स्वर्ग ले जाता है और अनुशासन बनाये रखता है, भारतीय प्रतिमाओं में दण्डी के हाथ में दण्ड या भाले का प्रदर्शन इसी का प्रमाण है।

गुप्तकाल के अन्त तक आते-आते सूर्य प्रतिमा निर्माण-विधान को निश्चित कर दिया गया। वाराहमिहिर के वृहत्संहिता में बतलाया गया है कि सूर्य को कुण्डल, हार तथा मुकुट से सुशोभित, कमल की द्युत्ति और मुस्कराते प्रसन्न मुख वाले, उदीच्यवेश, कंचुक तथा अव्यंग धारण किये हुए पैरों से वक्ष तक चोलक से ढके और हाथों में पद्म लिये हुए चित्रित किया जाना चाहिये। [9] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बतलाया गया है कि सूर्य के शरीर को ढका हुआ सात घोड़ों के द्वारा खींचे जाते हुए रथ पर सवार दिखाना चाहिए। सारथी अरुण, सूर्य के पुत्र रेवन्त तथा उनकी चार पत्नियों 'राज्ञी', 'निधुभा', 'छाया' और 'सुवर्चसा को भी प्रदर्शित करना चाहिए?मत्स्यपुराण के अनुसार भी सूर्य को उदीच्यवेश में सात घोड़ों के रथ पर सवार दिखाना चाहिये[10] ; उनके दोनों हाथों में कमल होना चाहिये, सूर्यदेव का पूरा शरीर चोलक वस्त्र से ढका होना चाहिये। ऐसा ही विवरण अग्निपुराण और विश्व-कर्म-शिल्प में भी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें सूर्य के साथ दण्डी और पिंगल का चित्रित होना भी बतलाया गया है।

उपरोक्त उत्तरभारतीय ग्रन्थों में वर्णित सूर्य-प्रतिमा निर्माण विधान के आधार पर निर्मित गुप्त काल के अन्तिम चरण की, बलिया जनपद (उ०प्र०) में 'बाँसडीह' तहसील के 'देवकली' नामक ग्राम के एक प्राचीन टीले से प्राप्त दो प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके निर्माण में प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों के पालन के साथ ही साथ उत्कृष्ट शिल्प का भी दर्शन होता है।[11] प्रथम प्रतिमा से 3 फुट 9 इंच लम्बा और 2 फुट 2 इंच चौड़ा पूरे पाषाण खण्ड पर सूर्य को पद्म-पीठ पर स्थानक मुद्रा में समभंग प्रदर्शित किया गया है। सूर्य देव यज्ञोपवीत, किरीट, मुकुट, कुण्डल तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत हैं[12] , उनके कमर में अव्यंग तथा पैरों में लम्बा उपानह (बूट) प्रदर्शित किया गया है। उनके सनाल कमल युक्त दोनों ही हाथ कन्धे तक उठे हुए हैं। उनके बॉयी ओर दण्ड लिये हुए जटा-मुकुटधारी दण्डी तथा दाँयी ओर लेखनी तथा मसिपात्र लिये हुए जटा-मुकुटधारी पिंगल

को प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा की एक विशेषता यह है कि दण्डी और पिंगल के भी पैरों में लम्बा उपानह (बूट) प्रदर्शित किया गया है। सूर्य देव के ऊपर दोनों तरफ पुष्पहार लेकर उड़ती हुई दो अप्सराएँ दिखायी गई हैं। इस प्रतिमा में सूर्य की पत्नियों, उषा, प्रत्युषा, रथ और अश्वों का प्रदर्शन नहीं हुआ है।[13]

दूसरी प्रतिमा में सूर्य प्रतिमा विकास के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। 2 फुट, 6 इंच लम्बा और 1 फुट 8 इंच चौड़ा भूरे पाषाण-खण्ड पर सूर्य देव को एक पीठिका पर समभंग खड़े प्रदर्शित किया गया है। नीचे पाद पीठ पर सात अश्वों को पंक्तिबद्ध दिखाया गया है। केन्द्रीय अश्व के ऊपर सारथी अरुण प्रदर्शित हैं, रथ और चक्र का अंकन नहीं हुआ है। सूर्य के सनाल-कमल युक्त दोनों हाथ कन्धे तक ऊपर उठे हुए हैं। उनके बाँए हाथ का कमल कुछ खण्डित हो गया है, वे अपने कमर में अव्यंग तथा पैरों में लम्बा बूट धारण किये हुए है। कन्धे से नीचे तक लटकता हुआ यज्ञोपवीत, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत सूर्य के वाम पार्शव में मुकुटधारी, दण्ड लिये हुए दण्डी और दाहिने पार्शव में लेखनी तथा मसिपात्र लिये हुए पिंगल प्रदर्शित हैं।[14] सारथी अरुण के पीछे और सूर्य के दोनों पैरों के मध्य में करण्ड मुकुट धारिणी एक देवी को प्रदर्शित किया गया है। मध्यकालीन अनेक सूर्य-प्रतिमाओं में सूर्य के दोनों पैरों के मध्य में इस प्रकार की देवी का अंकन किया गया है। बंगाल से प्राप्त मध्यकालीन सूर्य प्रतिमाओं में उत्कीर्ण इस देवी का तादात्म्य भट्टशाली महोदय ने सूर्य की एक पत्नी उषा से किया है।[15] किन्तु भविष्यपुराण में इस देवी को महाश्वेता बतलाया गया है। आर०पी० चन्दा, एम० गांगुली और जे०एन० बनर्जी ने भी इस देवी का समीकरण सूर्य की एक पत्नी भू-देवी-महाश्वेता से ही किया है। इस प्रतिमा में दण्डी के पीछे राज्ञी और पिंगल के पीछे निक्षुभा को भी दिखाया गया है, दण्डी और पिंगल के नीचे बाण मारती हुई उषा और प्रत्युषा का अंकन हुआ है। सूर्यदेव के बॉए तथा दाँए दोनों तरफ पीठिका पर नीचे सेक्रमशः गज, अश्व, मकर तथा व्याल आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनके निर्माण का कोई प्रतिमाशास्त्रीय आधार स्पष्ट नहीं हो पाता है। सम्भवतः इन आकृतियों के निर्माण के पीछे अलंकरण की भावना रही हो। प्रतिमा के ऊपर दोनों तरफ पुष्पहार लेकर उड़ती हुई दो अप्सराएँ तथा शीर्ष भाग पर भयानक राक्षस आकृति (सम्भवतः अन्धकार का प्रतीक) प्रदर्शित है। दोनों ही प्रतिमाएँ संरचना और शैली की दृष्टि से पूर्व मध्ययुगीन उत्तर भारतीय सूर्य प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।

गुप्त काल के दौरान सूर्य को एक महत्वपूर्ण देवता माना गया, जो जीवन, ऊर्जा, और प्रकाश का प्रतीक थे। गुप्तकाल की सूर्य प्रतिमाओं में प्रमुख विशेषताओं जैसे किरणमंडल, मुकुट, कमल, और दोनों हाथों में कमल के साथ उनकी शक्ति को भव्यता से दर्शाया गया। गुप्तकाल की मूर्तिकला में सूर्य देव को विभिन्न मुद्राओं में दर्शाया गया, जैसे मांडूकासन और भद्रासन मुद्रा में। इन प्रतिमाओं में रथ, सारथी अरुण, और सूर्य के चारों ओर देवता उषा और प्रत्युषा भी दिखाए गए, जो सूर्योपासना की प्रमुखता को दर्शाता है। इस युग में विदेशी तत्वों जैसे ऊँचा कोट और बूट के मिश्रण से सूर्य प्रतिमा को भारतीय तत्वों के साथ प्रस्तुत किया गया।गुप्तकालीन कला में सूर्य प्रतिमा का प्रमुखता से निर्माण मथुरा, मध्यप्रदेश, बंगाल, और अफगानिस्तान जैसे स्थानों पर हुआ। मध्यकाल में इस कला में और भी प्रगति हुई, जिसमें उषा, प्रत्युषा और महाश्वेता जैसी देवियों को भी सूर्य प्रतिमा के साथ अंकित किया गया।

संदर्भ: -

1. भागवत, पी.वी., *भारतीय मूर्तिकला और स्थापत्य कला,* वाराणसी, 1994, पृ.127.
2. मिश्र, रामस्वरूप, *वैदिक देवता और उनकी प्रतिमाएं,* नई दिल्ली, 1986, पृ.40.
3. शर्मा, आर.एन., *प्राचीन भारतीय मूर्तिकला,* इलाहाबाद, 2001, पृ.92.
4. दत्त, नरेंद्रनाथ, *हिंदू धर्म में प्रतिमा विज्ञान,* कोलकाता, 1984, पृ.104.
5. पाठक, सुधीर कुमार, *सूर्य की उपासना एवं भारतीय कला,* वाराणसी, 1992, पृ. 63.
6. टायलर, ई.बी.; *आदिम संस्कृति में धर्म,* पृ. 372.
7. सरस्वती, एस.के.; *बंगाल की प्रारंभिक मूर्तिकला,* पृ. 12.

8. बनर्जी, जे.एन.; *हिंदू मूर्तिकला का विकास*, पृ. 435.
9. बनर्जी, आर.डी.; *भुमारा में शिव मंदिर, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का स्मारक, संख्या 16*, पृ. 13.
10. अग्रवाल, वी.एस.; *मथुरा कला में ब्राह्मण मूर्तियों का विवरण, उत्तर प्रदेश ऐतिहासिक समाज की पत्रिका, खंड XXII*, पृ. 168-170.
11. भंडारकर, आर.जी.; *वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत* (डॉ. शाहेश्वरी द्वारा हिंदी अनुवाद), पृ. 171.
12. *वृहत्संहिता*, 58, श्लोक 46-48.
13. *विष्णुधर्मोत्तर पुराण*, अध्याय 67.
14. *मत्स्य पुराण*, अध्याय 61, श्लोक 1-8.
15. *देवकली, बलिया (उ.प्र.)*, पृ. 99.